दिव्यांगों के प्रति शैक्षिक दृष्टिकोण के आधार पर हिंदी फ़िल्मों का अध्ययन

सुधीर कुमार तिवारी*
अरबिंद कुमार झा**

सामान्यतः सिनेमा जन साधारण को सबसे अधिक प्रभावित करता है, जो मनोरंजन के साथ-ही-साथ सीख भी देता है। जन साधारण के शिक्षण और मनोरंजन के लिए साहित्य और सिनेमा अलग-अलग दो ऐसी विधाएँ हैं, जो मनुष्य के क्रिया-व्यापार तथा उसकी जीवन शैली को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती हैं। दिव्यांगों के प्रति हिंदी सिनेमा का दृष्टिकोण बदला है और यह बदलाव की सकारात्मक प्रक्रिया है। फ़िल्मों में अभिनीत कलाकारों के माध्यम से दिव्यांगों को समाज में कमज़ोर, दयनीय, लाचार, पराश्रित आदि रूपों में प्रस्तुत न करके, साहसी, धैर्यवान, हिम्मती और सकारात्मक दृष्टिकोण वाले व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

समाज में बदलाव लाने में शिक्षा और सिनेमा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यही बदलाव समाज के सकारात्मक पक्ष की ओर संकेत है। किसी भी देश में शिक्षा, साहित्य या फिर सिनेमा का अस्तित्व, सार्थकता और उपयोगिता के बिना नहीं रह सकता है। आज शिक्षा, साहित्य और सिनेमा की उपस्थिति उनकी सतर्कता और उपयोगिता का द्योतक है।

हम ज्ञान को संचार के माध्यम से जन-समुदाय तक पहुँचा सकते हैं। क्योंकि "मीडिया ही एक ऐसा माध्यम है जिसके पास संप्रेषण की असीम संभावनाएँ व क्षमताएँ हैं। वह किसी भी घटना को सार्थक रूप से प्रस्तुत करके लोगों तक पहुँचा सकता है। मीडिया के पास समझाने, समझ पैदा करने, समझ बदल देने या फिर समझदार तैयार करके 'समझ' को आगे बढ़ाने की क्षमता है। यही वजह है कि आज हम मीडिया से हर सार्थक बदलाव के लिए पहल करने की उम्मीद लगाते हैं।" (चोपड़ा, 2013)।

संचार के एक माध्यम के रूप में फ़िल्मों द्वारा दिव्यांगों पर यह शोध किया गया। जिसके शोध प्रश्न इस प्रकार हैं —

- हिंदी फ़िल्मों में विकलांगता का अभिनय करने वाले पात्रों द्वारा विकलांगता को किस तरह से प्रस्तुत किया गया है?
- हिंदी फ़िल्म जगत में चित्रित दिव्यांगों का वास्तविकता से किस प्रकार संबंध है?
- वर्तमान समय में भारतीय हिंदी सिनेमा का विकलांगता के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण है?

**शोधार्थी*, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र–442005
***डीन*, स्कूल ऑफ़ एजुकेशन, बाबा भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश–226025

- क्या हिंदी फ़िल्मों का विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण बदला है?
- विकलांगता किस तरह से हिंदी फ़िल्मों में चित्रित पात्र की मानवीय संवेदना, व्यक्तित्व, आचरण और विचार को प्रभावित करती है?
- दिव्यांगों के प्रति हिंदी फ़िल्में किस प्रकार के शैक्षिक निहितार्थ को प्रस्तुत कर रही हैं?

यह शोध गुणात्मक शोध विधि के नियमों पर आधारित था, जिसमें शोधक द्वारा दिव्यांगों के शैक्षिक दृष्टिकोण पर आधारित हिंदी फ़िल्मों के मूल्यांकन हेतु शोध पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, समाचार-पत्रों एवं संचार के अन्य साधन, जैसे—रेडियो, टेलीविज़न, इंटरनेट और मूलतः फ़िल्मों को ध्यान में रखते हुए आलोचनात्मक अवलोकन किया गया।

वर्तमान समय में विकलांगता पर आधारित चलचित्र

"विकलांगता शारीरिक रूप में लोगों से उतना नहीं छीनती जितना सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से वह उन्हें प्रभावित करती है। विकलांग व्यक्तियों के लिए भेदभाव मुक्त और समान जीवन का स्वप्न साकार करने के लिए संस्थागत प्रबंधों और कानूनी प्रावधानों में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता विकलांग व्यक्तियों के बारे में हमारी सोच में बदलाव की है।" कुमारी (2013)

तारे ज़मीं पर बच्चे पर केंद्रित एक भावात्मक रूप से झकझोरती फ़िल्म है। फ़िल्म का केंद्रीय पात्र ईशान पढ़ने में चाहे कमज़ोर हो, लेकिन उसका मन पेंटिंग बनाने में खूब रमता है, परंतु उसकी इस खूबी को जाने-समझे बिना ही उसके पिता द्वारा दंड स्वरूप उसे छात्रावास में डाल दिया जाता है। असफलता की आदत से पीड़ित ईशान को अपनी प्रतिभा का ज्ञान नहीं होता और उसकी इस प्रतिभा की पहचान उसके एक अध्यापक निकुंभ द्वारा की जाती है। निकुंभ, ईशान के अतीत के कार्यों की समीक्षा करता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ईशान की विफलता का मुख्य कारण उसकी पढ़ाई के प्रति अरुचि नहीं, बल्कि 'डिस्लेक्सिया' (Dyslexia) है। निकुंभ, ईशान की ज़रूरत के अनुरूप उसका ट्यूटर बन जाता है और विशेषज्ञों द्वारा डिस्लेक्सिया क्षेत्र में विकसित उपचारात्मक तकनीकों का उपयोग कर, उसकी कमियों को दूर करके उसकी खूबियों को निखारने का प्रयास करता है। फ़िल्म के माध्यम से यह दिखाया गया है कि जिज्ञासा का जन्म, जन्म के साथ होता है। हर बच्चे की अपनी चाहत, काबिलियत, खूबियाँ होती हैं। ज़रूरत है उन खूबियों को निखारने की। "सिनेमा के द्वारा शिक्षा को मनोरंजन विचारों के मिलाप के साथ दर्शकों को परोसा जाता है, जिससे दर्शक बोझिल शिक्षा पद्धति को छोड़ मनोरंजन के साथ ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। आज भारत में सिनेमा अपने आप में एक शिक्षा संस्थान का रूप ले रहा है। अब तो *शिक्षा के मार्फत सिनेमा* और *शिक्षा के मार्फत शिक्षा* ये मानो तंत्र बन गया है यही कारण है कि आई.आई.एम. जैसे मैनेजमेंट संस्थाओं में भी 'लगान' और 'थ्री इडियट' जैसी फिल्मों को पढ़ाया जाता है।" (सिंह, 2011)।

फ़िल्म बच्चों की उस समस्या पर आधारित है जिसे वर्तमान समय में बदमाशी और मक्कारी का दूसरा नाम दिया जाता है, लेकिन निकुंभ द्वारा उसी मक्कारी और बदमाशी को सृजनात्मक रूप

में परिणत किया जाता है। फ़िल्म में मनोरंजन के साथ-साथ भावनापूर्ण दृश्यों की प्रधानता है, जो ईशान से संबंधित लोगों के रूप में दिखाई देते हैं। इन मनोरंजन और भावनापूर्ण दृश्यों के माध्यम से बच्चों की शिक्षा से संबंधित कई बातें अनायास निकल आती हैं। फ़िल्म के माध्यम से शिक्षकों को यह संदेश दिया गया है कि वे कक्षा में विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को स्वीकार करते हुए, उनकी ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए, उन्हें प्रशिक्षित करें। फ़िल्म बच्चों के संदर्भ में यह सामाजिक संदेश देती है कि मार्गदर्शन और परामर्श द्वारा हम किसी भी बच्चे की कार्यक्षमता को उसकी उच्चतम ऊँचाई तक पहुँचा सकते हैं। फ़िल्म की यह विशेषता भी है कि दिव्यांगों की शैक्षिक, सामाजिक व भावनात्मक समस्याओं को मात्र प्रस्तुत ही नहीं किया गया, बल्कि उसके प्रभावशाली उपाय भी बताए गए हैं।

दिव्यांगों की मुख्य समस्या, उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्रदान करना है। अगर हमारा समाज उन्हें उसी रूप में स्वीकार करता है जिस रूप में वे हैं, तो आधी समस्या अपने आप ही खत्म हो जाती है। इसी सामाजिक समस्या पर आधारित सोनाली बोस द्वारा निर्देशित *मार्गरिटा विद ए स्ट्रॉ* फ़िल्म देश-विदेश के चर्चित फ़िल्म फ़ेस्टिवल्स में चर्चा के केंद्र में रही। फ़िल्म की नायिका लैला (केकला) मस्तिष्क पक्षाघात (सेरेब्रल पाल्सी) से प्रभावित है, लेकिन वह अपनी विकलांगता को लेकर असहज नहीं है। ज़िंदगी के प्रति उसका सकारात्मक दृष्टिकोण है। विकलांगता एक असमर्थता का बोधक है, जिसका बोध किसी कार्य को न कर पाने की व्यक्तिगत एवं सामाजिक बाधा है। फ़िल्म के आरंभिक क्षणों में जब लिफ़्ट खराब हो जाती है, तब लैला को सीढ़ियों के माध्यम से ऊपर चढ़ाया जाता है। इस फ़िल्म में यह दिखाया गया है कि लैला जो दिल्ली विश्वविद्यालय में रहकर पढ़ाई कर रही है और उस विश्वविद्यालय में शारीरिक अक्षम दिव्यांगों के लिए रैंप जैसी व्यवस्था नहीं है, तो अन्य जगहों से दिव्यांगों के लिए रैंप की उम्मीद रखना बेमानी है। "विशेष चुनौतियों वाले व्यक्तियों के प्रश्न पर 1978 में प्रकाशित अपनी चर्चित किताब *हैंडिकेपिंग अमेरिका* में दिव्यांगों के अधिकारों के लिए संघर्षरत फ्रैंक बोवे लिखते हैं कि असली मुद्दा विकलांगता है, फिर चाहे वह दृष्टिबाधित हो या चलनजनित। अगर कोई समुदाय भौतिक, स्थापत्य शास्त्रीय, यातायात संबंधी तथा अन्य बाधाओं को बनाए रखता है तो वह समाज उन कठिनाइयों का निर्माण कर रहा है जो विकलांगता से पीड़ित व्यक्ति को उत्पीड़ित करते हैं। दूसरी तरफ अगर कोई समुदाय इन बाधाओं को हटाता है तब विकलांगता से पीड़ित व्यक्ति अधिक ऊँचे स्तर पर काम कर सकते हैं।" (गताड़े, 2013) इसका तात्पर्य यह है कि विकलांगता की निर्मिति सामाजिक रूप से अधिक होती है।

मार्गरिटा विद ए स्ट्रॉ फ़िल्म दिव्यांगों की शिक्षा, शारीरिक ज़रूरतों और सामाजिक सोच में बदलाव की ओर संकेत करती है। विकलांगता किस प्रकार से दिव्यांगों के संवेग, व्यक्तित्व, आचरण और विचारों को प्रभावित करती है, इसे लैला के माध्यम से सोनाली बोस ने प्रभावशाली ढंग से दिखाया है। किसी फ़िल्म में पहली बार दिव्यांगों की शारीरिक ज़रूरतों को प्रस्तुत किया गया है। फ़िल्म में दिखाया गया है कि जब लैला अपनी माँ की जागरूकता के

चलते न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी पहुँचती है तो देखती है कि वहाँ की बसों में शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों के लिए व्हीलचेयर के साथ आसानी से अंदर जाने की सुविधा है। फ़िल्म के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि विकलांगता का संबंध असुविधा से है, जो उन्हें असमर्थ बनाती है और उनकी योग्यता का क्षरण करती है। अगर दिव्यांगों को उचित शिक्षा, बाधारहित वातावरण एवं सामाजिक जागरूकता के साथ उनकी योग्यता का परिमार्जन किया जाए तो वह भी समाज की उन्नति में अपना अमूल्य योगदान प्रदान कर सकते हैं, ज़रूरत है मात्र सामाजिक जागरूकता की जो फ़िल्म में दिव्यांगों के प्रति विदेशी समाज के सकारात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से देखी जा सकती है।

"*ब्लैक* फ़िल्म के माध्यम से हेलन केलर की वास्तविक कहानी द्वारा क्रांतिकारी तथा सामाजिक उपयोगितापरक तत्वों को निकालने के बाद संजय लीला भंसाली ने *गुज़ारिश* फ़िल्म में स्टीफ़न हॉकिंग की तरह जिजीविषा से भरपूर एथन को 12 वर्षों तक खुशियाँ बाँटते दिखाया। स्टीफ़न हॉकिंग 70 साल बाद अपने गालों की पेशियों से भी नियंत्रण खो देने के कारण एक मिनट में मशीन के सहारे मात्र पाँच शब्द बोल पाने तक सीमित हो गए। स्टीफ़न हॉकिंग की अदम्य जिजीविषा तथा निरंतर भौतिक विज्ञान की गुत्थियों से उलझाते रहने की कहानी के बदले *गुज़ारिश* फ़िल्म में 12 साल तक दुनिया को खुशियाँ देने की कहानी को दिलचस्प रोमांस की चाशनी में डुबोकर परोसा गया है।" (कुमार, 2013)

गुज़ारिश फ़िल्म का आरंभ एथन मैस्करेनहास (ऋतिक रोशन) की असमर्थता से होता है, जिसका अपने शरीर पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं है। विश्व प्रसिद्ध जादूगर एथन 14 साल पूर्व अपने मैजिक शो के दौरान हुई दुर्घटना के परिणामस्वरूप पैरालाइज़ हो जाता है, फिर भी वह रेडियो जॉकी बनकर रेडियो ज़िंदगी प्रोग्राम के माध्यम से अपने श्रोताओं एवं कॉल करने वाले व्यक्तियों के जीवन में आशा, खुशियाँ बाँटता है और उन्हें प्रेरित करता है। वह ज़िंदगी से हताश लोगों की सहायता करता है और उन्हें समझाता है कि ज़िंदगी बहुत खूबसूरत है। 'लाइफ इज़ गुड', 'लाइफ़ इज़ वंडरफुल', 'लाइफ़ इज़ पैन', 'इट्स ऑल पार्ट ऑफ़ द गेम', फ़िल्म दिव्यांगों में आशा और साहस का संचार करती है।

अनुभूति एवं सहानुभूति में काफ़ी अंतर है। अगर हम दिव्यांगों की ज़िंदगी को सही अर्थों में समझना चाहते हैं तो हमें सहानुभूति के घेरे से निकलकर अनुभूति तक आना ही पड़ेगा। स्वानुभूति और सहानुभूति के अंतर को *गुज़ारिश* के माध्यम से, दर्शकों तक स्पष्ट रूप में संप्रेषित किया गया है। भंसाली ने एथन जैसे दिव्यांगों के संदर्भ में एक नए विचार को रखा है जिस पर सोचने की ज़रूरत है। फ़िल्म के माध्यम से भंसाली ने यह बताने का प्रयास किया है कि दिव्यांग लोगों के विचार महत्वपूर्ण है, न कि उनकी विकलांगता। वे विचार जो दूसरों को प्रेरित करते हैं, वे विचार जो दूसरों में आशा का संचार करते हैं, जो दूसरों के जीवन में खुशियाँ लाते हैं, महत्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वान फ़िल्मों में विकलांगता को प्रदर्शन मात्र मानते हैं, उन्हें अपने विचार पर विचार करने की ज़रूरत है, क्योंकि फ़िल्मों के माध्यम से हम दिव्यांगों के आधुनिक

उपकरणों (फोल्डिंग केन, स्मार्ट व्हीलचेयर, स्मार्टफोन, नए-नए मोबाइल डिवाइस) से दिव्यांग और समाज का परिचय करा सकते हैं। आवश्यकता है— हमारे सकारात्मक दृष्टिकोण की।

संडे गार्डियन समाचार-पत्र में पिछले साल एक कहानी प्रकाशित की गई थी, जिसमें पुनर्वास, प्रौद्योगिकी सुगमता, भाषा जैसी स्थिति को उजागर किया गया था। 'टेक्नोलॉजी हेल्पस डिस्एबल पीपुल इज़ एकस्पेंसिव' नामक लेख में चेन्नई के रहने वाले 20 साल के नौजवान रोहित पारेख जैन की दास्तां बयाँ की गई थी। जिसे सेरेब्रल पाल्सी है और वह अपनी पूरी ज़िंदगी में मौखिक तौर पर किसी से संवाद नहीं कर सका है। लेख के मुताबिक कुछ साल पहले उसने अपनी ज़िंदगी के पहले वाक्य का उच्चारण किया। जिसके लिए उसने आवाज़ नामक एक डिवाइस (उपकरण) का उपयोग किया, जिसमें ग्राफ़िकल इंटरफ़ेस, प्रोसेसर, सॉफ़्टवेयर और एक नॉनकांटैक्ट स्विच था, जिसे सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित लोगों द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है ताकि वे अक्षरों को चुनें और वाक्य को गढ़ें। इस डिवाइस की रूपरेखा चेन्नई में 2005 में संपन्न साइलेंस रेवोल्यूशन कॉन्फ्रेंस के दौरान बनी जिसकी कीमत तीस हजार रुपये के करीब रखी गयी। (गताड़े, 2013)

किसी भी व्यक्ति के बारे में निर्णय का आधार यह होना चाहिए कि वह क्या कर सकता है, न कि वह क्या नहीं कर सकता। हमारी सोच में यह परिवर्तन तेज़ी से आ सकता है यदि हम दिव्यांगों का मूल्यांकन उनकी योग्यता के आधार पर करें। आर. बाल्की द्वारा निर्देशित *शमिताभ* फ़िल्म का संदेश यह है कि विकलांगता कभी भी सपनों के आड़े नहीं आती। अगर आप अपने सपनों को बहुत ज़्यादा चाहते हैं तो कोई-न-कोई दूसरा विकल्प निकल ही आता है। दानिश की सहायता के लिए टेक्नोलॉजी दूसरे विकल्प के रूप में आती है। फ़िल्म यह भी बताने का प्रयास करती है कि अगर दिव्यांगों की क्षमता को टेक्नोलॉजी से जोड़ दिया जाए तो हम उनकी क्षमता को, प्रतिभा को एक नयी दिशा प्रदान कर सकते हैं। फ़िल्म यह भी संदेश देती है कि जब कोई दिव्यांग विशिष्ट कार्य करता है तो वो 'लीजेंड' बन जाता है।

संजय गुप्ता द्वारा निर्देशित फ़िल्म *काबिल* का शुभारंभ ही दृष्टिबाधित दिव्यांग रोहन भटनागर (ऋतिक रोशन) के स्वावलंबन के साथ होता है। वह दृष्टिबाधित होने के कारण बेचारा नहीं है, वरन् वह अपने कार्यों के साथ-ही-साथ दूसरों की भी सहायता करता है। फ़िल्म के माध्यम से दिव्यांगों के संबंध में यह बताने का प्रयास किया गया है कि अगर किसी के पास पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं हैं तो प्राप्त ज्ञानेन्द्रियों के विकास द्वारा शेष ज्ञानेन्द्रिय क्षमता की पूर्ति की जा सकती है। दिव्यांगों की अक्षमता का एक मुख्य कारण आवागमन बाधित होना भी है, लेकिन अगर दिव्यांगों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाए तो वे बाधारहित आवागमन कर सकते हैं, लेकिन इसमें अभ्यास और प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

वर्तमान समय में एन.जी.ओ. संदेह के घेरे में रहते हैं, लेकिन फ़िल्म के माध्यम से एन.जी.ओ. द्वारा दिव्यांगों के प्रति सार्थक प्रयास को देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप— जब सुप्रिया, रोहन से कहती है, ''रोहन मैं पहले जैसी नहीं रही, अगर तुम मेरे साथ नहीं रहना चाहते तो कोई प्रॉब्लम नहीं। ''मेरे पास

एन.जी.ओ. वाला जॉब है। मैं वहीं चली जाऊँगी।'' जब हवलदार कहता है, "सर पक्का के.बी.सी. चालू हो गया है, मैं तो कहता हूँ इसे उठा लेते हैं'' , अनमोल चौबे हवलदार को समझाता है— "पागल है क्या? एक तो हमारे पास कोई एविडेंस नहीं है, दूसरा अँधा है वो। दुनिया भर के एन.जी.ओ. और मीडिया पीछे पड़ जायेंगे।'' इस प्रकार की बातें दिव्यांगों के संबंध में, मीडिया और एन.जी.ओ. की समाज में अपनी सकारात्मक भूमिका की ओर संकेत देती हैं।

निष्कर्ष

आर. बाल्की, *शमिताभ* के माध्यम से यह बताने का प्रयास करते हैं कि दिव्यांग और सामान्य, दोनों को ही एक-दूसरे की ज़रूरत है। दानिश और अमिताभ को अक्षरा, ज़िंदगी की ए बी सी डी समझाते हुए बताती है कि अकेला कोई नहीं रह सकता। अगर आगे बढ़ना है तो साथ रहना है।

मार्गरिटा विद ए स्ट्रा फ़िल्म के माध्यम से दिखाया गया है कि समाज में सामान्य लोगों एवं स्वयं दिव्यांगों का दिव्यांगों के प्रति कैसा दृष्टिकोण है। हुसैन, लैला से कहता है— ''नार्मल लोगों के साथ दोस्ती करने से तुम नार्मल नहीं हो जाओगी'' और खानुम कहती है— ''क्या जेनेड ने तुम्हे नार्मल होने का सर्टिफिकेट दे दिया है।'' लोगों में दिव्यांगों के प्रति विकृत मानसिकता एवं वातावरण में अपरिपक्वता के भाव के फलस्वरूप लैला की माँ पुनः उसे विदेश भेजने का निर्णय लेती है।

फ़िल्म में स्पर्शीय घड़ी, वाइट केन, स्मार्टफ़ोन (जो दिव्यांगों के विचारों को दूसरे तक संप्रेषित करने में मदद करते हैं) व्हीलचेयर हैं, जो दिव्यांगों की दैनिक समस्यायों को काफ़ी हद तक कम कर सकते हैं। आवश्यकता है केवल हमारी जागरूकता की। क्या कारण है कि विदेशों में दिव्यांगों की क्षमता का उपयोग होता है और हमारे यहाँ उन्हें एक बोझ समझा जाता है! दिव्यांगों की शिक्षा और योग्यता से संबंधित कई बातों पर फ़िल्म सोचने पर मजबूर करती है।

एथन का रवैया ज़िंदगी के प्रति पॉज़िटिव है। वह ज़िंदगी का मरते समय तक आनन्द लेता है। भंसाली ने फ़िल्म में दिखाया है कि दिव्यांग व्यक्ति की ज़रूरतें सामान्य व्यक्ति की तरह ही होती हैं, चाहे वह ज़रूरतें शारीरिक हों या फिर मानसिक। एथन को लोगों की उतनी ही ज़रूरत है जितनी लोगों को एथन की। एथन पैरालिसिस लोगों में ज़िंदगी के प्रति आशा संचार करता है। फ़िल्म के माध्यम से भंसाली ने इस बात को भी उठाया है कि दिव्यांगों का प्रेरणा स्रोत दिव्यांग हो तो दिव्यांगों में आशा, विश्वास, प्रेरणा, आत्मविश्वास और जिजीविषा में अधिक बढ़ोत्तरी की जा सकती है, क्योंकि भारतीय दर्शक फ़िल्मों के नायकों एवं नायिकाओं को एक मॉडल के रूप में स्वीकार करते हैं। स्क्रीन पर नायक या नायिका द्वारा किए गए अभिनय से समाज का एक बड़ा वर्ग प्रभावित होता है। फिल्मों में दिव्यांग नायक या नायिका की भूमिका काफ़ी हद तक समाज को दिव्यांगों के प्रति सोचने, समझने और उनके प्रति सकारात्मक सोच रखने में सहायक होती है।

संजय गुप्ता द्वारा निर्देशित फ़िल्म *काबिल* दो दिव्यांग व्यक्तियों, रोहन और सुप्रिया के मिलने से शुरू होती है और फिर वे एक-दूसरे का सहारा बन

जाते हैं। दृष्टिबाधित होने के बावजूद भी दोनों का दृष्टिकोण ज़िंदगी के प्रति काफ़ी सकारात्मक है।

रोहन द्वारा जीवन की चुनौतियों का सामना करने में अपनी श्रवण क्षमता, घ्राण क्षमता, स्पर्शीय क्षमता का प्रयोग दिव्यांगों के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव लाता है। फ़िल्म में दृष्टिबाधित दिव्यांगों के सहायक उपकरण, जैसे— ब्रेल, फ़ोल्डिंग केन, स्पर्शीय टॉकिंग वॉच, को दिखाया गया है जिससे जन-समुदाय दिव्यांगों के उपकरणों के प्रति जागरूक होता है।

आज समाज की सोच पर सिनेमा का यथार्थ चित्रण हो रहा है। यह सही है कि कभी-कभी यथार्थ देखने में अच्छा नहीं होता, लेकिन यदि दुष्परिणामों, हमारे आदर्शों, नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखा जाए तो दिव्यांगों के प्रति मानवीय प्रवृत्तियों की भावना का विकास फ़िल्मों के माध्यम से किया जा सकता है।

फ़िल्मों के माध्यम से समाज को यह बताने का प्रयास किया गया है कि दिव्यांगों को अगर समय पर विशेषज्ञों द्वारा उपचारात्मक तरीके से सिखाया जाए तो विकलांगता के दुष्प्रभाव को काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है और उनके अंदर मौजूद क्षमताओं और खूबियों को निखारा जा सकता है, जिससे दिव्यांगों पर विकलांगता हावी नहीं हो सकती। 21वीं शताब्दी में विकलांगता पर आधारित फ़िल्मों को केंद्र में रखते हुए बात करें तो पाते हैं कि इन फ़िल्मों के माध्यम से विकलांगता के प्रति समाज को सार्थक संदेश दिया जाता है, जिससे समाज में दिव्यांगों के प्रति जागरूकता बढ़ती है, जो दिव्यांगों और समाज, दोनों के लिए लाभप्रद है। दिव्यांगों के प्रति फ़िल्मों के विकास क्रम को निम्न बिंदुओं के आधार पर बताया जा सकता है —

- हिंदी फ़िल्मों में विकलांगता का अभिनय करने वाले पात्रों द्वारा विकलांगता को समाज में सकारात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है।
- हिंदी फ़िल्म जगत में चित्रित दिव्यांगों का वास्तविकता से धनात्मक संबंध है।
- वर्तमान समय में भारतीय हिंदी सिनेमा का विकलांगता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है।
- विकलांगता के प्रति हिंदी फ़िल्म जगत के दृष्टिकोण में सकारात्मक ढंग से बदलाव हुए हैं।
- हिंदी फ़िल्मों में चित्रित पात्रों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि विकलांगता दिव्यांगों की मानवीय संवेदना, व्यक्तित्व, आचरण और विचारों को काफ़ी गहराई तक प्रभावित करती है।
- हिंदी फ़िल्मों के माध्यम से विकलांगता के प्रकार, पहचान, रोकथाम एवं दिव्यांगों के समावेशीकरण जैसे शैक्षिक निहितार्थों को समाज में प्रस्तुत किया गया है।

अत: हम कह सकते हैं कि हिंदी सिनेमा जगत द्वारा लोगों के दृष्टिकोण में दिव्यांगों के प्रति सकारात्मक बदलाव हो रहा है और यह बदलाव की सकारात्मक प्रक्रिया है। फ़िल्मों में अभिनीत कलाकारों के माध्यम से दिव्यांगों को कमज़ोर, दयनीय, लाचार, पराश्रित आदि रूपों में प्रस्तुत न करके उन्हें साहसी, धैर्यवान, हिम्मती और सकारात्मक दृष्टिकोण वाले व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

फ़िल्मों के संबंध में सुझाव

- समाज को दिव्यांगों के प्रति जागरूक करने के लिए फ़िल्मों का निर्माण उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए, जिसमें मनोरंजन के साथ-साथ दिव्यांगों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए और उनके संघर्ष को दिखाया जाए जो दिव्यांगों के लिए प्रेरणा का कार्य करेंगी।
- फ़िल्में दिव्यांगों की जीवनी, जैसे— रूज़वेल्ट, हेलेन केलर, स्टीफ़न हॉकिंग, अल्बर्ट आइंस्टीन, थॉमस अल्वा एडिसन, लुई ब्रेल आदि जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगी तो दिव्यांगों को अधिक-से-अधिक आशावान बनाएँगी और समाज को दिव्यांगों के प्रति सोचने हेतु प्रेरित करेंगी।
- फ़िल्में दिव्यांगों को समाज में समावेशित वातावरण तैयार करने में आधारभूत भूमिका का निर्वहन करती हैं, इसलिए फ़िल्मों की महत्ता को स्वीकार करते हुए शिक्षा प्रधान फ़िल्मों से प्रभावित होकर सी.बी.एस.ई. ने 10वीं और 11वीं कक्षा में फ़िल्म अध्ययन को एक विषय के रूप में शामिल किया है।
- फ़िल्मों में दिव्यांग पात्रों को आधुनिक उपकरणों से जोड़कर दिखाया जाना चाहिए जिससे दिव्यांग और समाज, दोनों ही ज़रूरत से संबंधित आधुनिक उपकरणों के प्रति जागरूक हो सकें, क्योंकि पारंपरिक शिक्षण पद्धतियाँ दिव्यांगों के पक्ष में नहीं हैं। अब उनमें बदलाव होना चाहिए, इसके लिए आवश्यक है कि फ़िल्मों के द्वारा दिव्यांगों को अधिक-से-अधिक आधुनिक उपकरणों से जोड़कर दिखाया जाए।

रूज़वेल्ट, हेलेन केलर, स्टीफन हॉकिंग, अल्बर्ट आइंस्टीन, थॉमस अल्वा एडिसन, लुई ब्रेल आदि वास्तविक किरदार हैं जो दिव्यांग होते हुए भी समाज में अधिक सक्रिय रहे। स्टीफन हॉकिंग और हेलेन केलर, क्रमशः एक व्हीलचेयर पर आश्रित महान वैज्ञानिक तो दूसरी मूक-बधिर लेकिन विश्व की महान लेखिकाओं में से एक है। अल्बर्ट आइंस्टीन में सीखने की क्षमता कम थी, फिर भी उन्होंने 'सापेक्षता का सिद्धान्त' विकसित किया। थॉमस अल्वा एडिसन ऊँचा सुनते थे, लेकिन 'बिजली' का आविष्कार करके संसार को प्रकाशवान कर दिया। लुई ब्रेल देख नहीं सकते थे, लेकिन उनकी खोज ने दुनिया के दृष्टिबाधित दिव्यांगों को पढ़ने और सीखने की क्षमता दी। इन लोगों ने अपनी प्रतिभा से सिद्ध किया कि अक्षमता नहीं क्षमता महत्वपूर्ण है। ऐसे महारथियों की एक लंबी सूची है, जिन्होंने शरीर के किसी अंग के क्रियाशील न होने के बावजूद भी अपनी प्रतिभा से पूरे विश्व को लाभान्वित किया।

शैक्षिक निहितार्थ

सिनेमा संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा समाज के लोगों को विकलांगता के प्रकार, पहचान, रोकथाम एवं दिव्यांगों की शिक्षा एवं उनके समावेशीकरण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों के प्रति जागरूक किया जा रहा है। इस शोध के निष्कर्ष भी इस ओर इशारा करते हैं। शोध में चयनित फ़िल्मों (*तारे ज़मीन पर, गुज़ारिश, मार्गरिटा विद ए स्ट्रा,*

शमिताभ, काबिल) ने समाज में दिव्यांगों की शिक्षा, उनकी समस्याओं, जीवन लक्ष्यों, कार्यानुशासन, मेहनत, लगन, कोशिश एवं उद्देश्य प्राप्ति हेतु जूनून पर प्रकाश डाला है। 'प्रत्येक बालक एक विशिष्ट बालक है' यह कथन इस बात का संकेतक है कि प्रत्येक बालक में कुछ नैसर्गिक गुण एवं प्रतिभा विद्यमान होती है। प्रत्येक बालक में कुछ विशिष्टताएँ होती हैं, जो उसे दूसरों से अलग करती हैं। ज़रूरत है मात्र उन विशिष्टताओं की पहचान कर उन्हें सार्थक दिशा प्रदान करने की। प्रस्तुत शोध से प्राप्त निष्कर्ष भी इन्हीं बिंदुओं की ओर संकेत करते हैं।

सिनेमा जगत पर महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी है कि वह समाज को मनोरंजन के साथ-ही-साथ दिव्यांगों के प्रति शिक्षित एवं जागरूक करे। मानव संसाधन विकास में दिव्यांगों का महत्वपूर्ण योगदान संभव है, परंतु इसके लिए सभी विकलांगताओं से पीड़ित व्यक्तियों की उचित दिशा, शिक्षा, भरण-पोषण एवं पुनर्वास आवश्यक है। सिनेमा जगत इस क्षेत्र में अपनी प्रभावकारी भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

संदर्भ

कुमार, अनिरुद्ध. 2013. सिनेमाई बाज़ार में विकलांगता की नुमाइश — करुणा का बिकाऊ फ़ॉर्मूला. *इस्पातिका सिनेमा के सरोकार*. अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका. जनवरी-जुलाई, अंक 05, वर्ष 03, पृ. 140. जमशेदपुर, झारखंड.

कुमारी, रेमी. 2013. *योजना* (विकलांगता विशेषांक). अप्रैल, अंक 4, वर्ष 57. पृ. 05. नयी दिल्ली.

गताड़े, सुभाष. 2013. विकलांगता एवं प्रौद्योगिकी. *योजना*. अप्रैल, अंक 4, वर्ष 57. पृ. 30. नयी दिल्ली.

चोपड़ा, धनंजय. 2013. विकलांगता और मीडिया की ज़िम्मेदारी. *योजना*. अप्रैल, अंक 4, वर्ष 57. पृ. 38. नयी दिल्ली.

सिंह, रितेश कुमार. 2011. *शिक्षा और हिंदी सिनेमा के अंतर्संबंध* (विशेष संदर्भ — राजकुमार हिरानी का सिनेमा). महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, नाट्यकला एवं फ़िल्म अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध (एम. फिल.). पृ. 77.